बेदखली– समाधान या समस्या?

बेदखली का इतिहास क्या है?

दिल्ली में बदलाव और बेदखली दोनों हमेशा एक साथ होती रही है- चाहे वो 1903 में रेल की पटरी द्वारा शाहजहांनाबाद को चीरने; 1910 में रायसीना की छाती पर नई दिल्ली की नीव डालने; 1920 में कनॉट प्लेस (राजीव चौक) का निर्माण करने; 1950 में रिफ्यूजी कॉलोनी बसाने; 1975 में एशियाड खेल की तैयारी में; 1990 में शहर के नवीनकरण की खातिर; 2002 मे राष्ट्रमंडल खेल के बहाने; फिर 2021 में कोविड के दौरान; और अब G-20 सम्मलेन के सम्मान में, हर बदलाव के वक़्त जबरन बेदखली हुई; लाखों परिवार, सैकड़ों गाँव, हज़ारों बस्तियों को 'जन हित' के नाम उजाड़कर शहर के बाहर फेंका गया। दशकों बाद आज भी ऐसे परिवार हैं जिन्हें ज़मीन का एक छोटा सा हिस्सा नसीब नहीं हुआ; जिन्हें मूलभूत सुविधाएं नहीं मिल पायी।

बस्तीवासी जन नहीं है?

ये ***'जन हित'*** है क्या? जो हर चुनाव में वोट डालते हैं; जिनके पास हर तरह के दस्तावेज हैं; जो वर्षों से ज़मीन का पालन करते आयें हैं; जिनकी महनत से शहर 'विश्व स्तरीय' बनता है: क्या वे '***जन***' नहीं हैं? क्या वे इस देश के नागरिक नहीं हैं? उन्हें संविधान के तहत आश्रय, जीवन, और आजीविका का अधिकार क्यों नहीं मिलता? आजादी के 75वे वर्ष के अमृत काल में संविधान के जन्मदाता 'हम भारत के लोग '***जन***' कब बनेंगे; और उनके 'हित' में नीतियाँ कब बनेंगी? जो काम सरकार को करना चाहिए वो काम भारत के लोगों ने खुद से किया है। एक सर्वे से पता चलता है कि बस्ती के एक-एक परिवार नें दो दशक में आवास, बिजली, पानी, यातायात, स्वास्थ्य, शिक्षा, शौचालय, कर्ज़ा, रखरखाव, आदि पर लगभग 13 लाख रूपए खर्च किये-अर्थात हर साल रू. 65,000. इतनी बड़ी रक़म खर्च करने पर भी क्या वो '***जन***' नहीं कहलायेंगे?

आवास क्यूँ नहीं है?

डीडीए 1962 से हर 20 वर्ष दिल्ली का मास्टर प्लान बनाती है, उनका दावा है कि 11 लाख घर बनाए हैं। लेकिन वे यह नहीं बताते कि 1962-1981, 1982-2001, और 2002-2021 के 20-20 वर्षों में उन्हें 7.5, 16.3 और 24 लाख-कुल मिलाकर 47.8 लाख - घर बनाने थे। अगले 20 वर्षों में भी 34.5 लाख घर बनाने का प्रस्ताव 2041 के मास्टर प्लान में है। अब अधिकृत घर नहीं बनेंगे तो 'जन' क्या करेंगे? डीडीए की नाकामी की वजह से लोगों को अपने ही हित में अपना मकान बनाना पड़ा। फिल्हाल दिल्ली में 675 बस्ती और 1,799 कच्ची कॉलोनी हैं जिनमे लगभाग दिल्ली की आधी आबादी रहती है, जो 'अवैध' है। ऐसा भी नहीं कि दिल्ली में लगातार ज़्यादा 'जन' आते गए, प्रस्तावित की तुलना में आबादी 1981 में 20%, और 2001 में सिर्फ 7.5% से बढ़ गयी थी, जबकि 2021 में 11.7% से घट गयी थी।

ज़मीन का सवाल क्या है?

अब घर बनाने के लिए ज़मीन चाहिए, डीडीए की तरफ से एक बात दोहराई जाती है, कि ज़मीन नहीं है। लेकिन तीनों मास्टर प्लान के आंकड़ों को जोड़कर देखा जाए तो पता चलता है कि शहरी ज़मीन में से, अलग अलग समय पर, 40%-50% रहिवाशी इलाका घोषित किया गया है - याने कि लगभग 42,000 हेक्टेयर (1 हे. = 2.5 एकड़) 100 घर प्रति हेक्टेयर के मानक का मतलब है एक घर के लिए 100 वर्ग मीटर (मी^{2}) ज़मीन, इस मानक के हिसाब से इतनी ज़मीन पर लगभग 42 लाख घर बन सकते थे। लेकिन इस मानक को भी लगातार बदला गया। बेदखली के समय यह घट कर पहले

70मी^{2}, फिर 67मी^{2}, 40मी^{2}, 36मी^{2}, 25मी^{2}, 18मी^{2}, और अब 12½मी^{2} हो गया है, कोई आधार नहीं है की एक परिवार कितने ज़मीन पर गुज़ारा कर सकता है, लेकिन अगर 12½मी^{2} का सरकारी मकान ही मान लिया जाये तो मौजूदा 42,000 हे. पर 336 लाख घर बन सकते हैं -जहाँ दिल्ली में इस वक़्त केवल 70 लाख परिवार होंगे।

योग्यता का मतलब?

परन्तु एक परिवार को ज़मीन को पाने के लिए हमें अपनी योग्यता सिद्ध करनी होती है। अमीर परिवार के लिए योग्यता का पैमाना सिर्फ पैसा है। लेकिन ग़रीबों के लिए शर्तें बदल जाती हैं। 1990 से पूर्व योग्यता के प्रमाण के रूप में राशन कार्ड, चुनाव पहचान पत्र, एम.सी.डी. जन्म अथवा मृत्यु प्रमाण पत्र, बच्चे का स्कूल प्रमान पत्र में से किसी एक दस्तावेज का होना काफी था। उसके बाद के वर्षों में कट ऑफ़ तारीख का प्रावधान जोड़ दिया गया, जो 1998 से बढ़कर अब 2017 हो गया है। ज़मीन की मात्रा छोटी होती जा रही थी; साथ में उसकी क़ीमत भी बढ़ने लगी, सालाना रू. 16 की राशि में 99 वर्षों की लीज़ पर दी जाने वाली ज़मीन से रू.7000 और 5 साल के लाईसेंस पर बेचीं जाने लगी; और अब फ्लैट में रू. 1,53,000 दे कर 15 साल के लाईसेंस पर रहना होगा।

जन और सर्वाजन

2007 के बाद से ताज़ा ख़बर है पब्लिक प्राइवेट पार्टिसिपेशन (पी.पी.पी.) की ज़मीन और घरों की कमी के बहाने, डीडीए अपनी ज़िम्मेदारी से पीछे हटते हुए सारा भार निजी बिल्डरों को सोंप रही है। तहखंड और शादीपुर जैसे इलाकों में इस मॉडल को आज़माया जा रहा है। बस्ती की ही ज़मीन बिल्डर को दी जा रही है जिस में से 60% ज़मीन पर 'स्व-स्थान विकास' (इन सिटू नीति) के अन्तर्गत ऊंची इमारतों में 21 वर्ग मीटर के फ्लैट योग्य बस्ती वासियों को मिल रहे हैं। बची हुई 40% ज़मीन में से 20% निवासियों के रोज़मर्रा के इस्तेमाल के लिए रखा है; और 20% से बिल्डर अपना लाभ कमा सकता है। इस सपने के पीछे असलियत यह है कि वर्तमान में बनी कम ऊंची फ़्लैट में से लगभग 66,000 फ्लैट्स ख़ाली पड़े हैं क्योंकि कोई वहां जाकर बसने को तैयार नहीं। अयोग्य परिवारों की भारी संख्या की तो कोई बात ही नहीं करता।

असली मसला क्या है ?

डीडीए ने पहले पुनर्वास और घर बनाने की ज़िम्मेदारी डी.एस.आई.डी.सी. के कंधे डाल दी थी। और अब डी.यू.एस.आई.बी. को दे दी है। इस पूरे काम में सर्वे से लेकर घर और सुविधा देने तक, भूमाफिया, दलाल और अधिकारी की हेराफेरी तेज़ी से फ़ैल रही है। **असली मसला घर का नहीं, बल्कि ज़मीन का है,** भारत में "प्रतिकूल कब्जा" (एडवर्स पोज़ेशन, लिमिटेशन एक्ट, 1963) का कानून है जिसमें यदि किसी ने निजी संपत्ति पर 12 साल, या सरकारी संपत्ति पर 30 साल, से क़ब्ज़ा किया है, तो वह उस के स्वामित्व का दावा कर सकता है। क्या अब फ़्लैट के बदले ज़मीन की बात को उठाने की आवश्यकता है? क्या मास्टर प्लान के प्रावधान और "प्रतिकूल कब्जा" के सिध्धांत के सहारे *इसके लिए एक ठोस रणनीति बन सकती है ?* जिसके साथ रोज़गार, पानी, बिजली, राशन, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य के मुद्दे भी जोड़े जा सकते हैं? ज़रा सोचिये!

ख़तरा केंद्र c/o सुखमनी फार्म, ऑप. आनंद मार्ग आश्रम, मांडी रोड, गदाईपुर, नई दिल्ली – 110030

ई-मेल : hazardscentre@gmail.com फ़ोन न.: 011 – 7144 5066